मनुष्य बनो

नवम्बर १९८९

वा० मू० २०.००

शरणागति, शुभ संकल्प,

क्षमा,   प्रेम,

निष्काम कर्म, ब्रह्मचर्य पालन,

संरक्षक

दयाल फकीरचन्दजी महाराज

मानवता मन्दिर होशियारपुर (पंजाब)

'मनुष्य बनो' के नियम

१—शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिकता के नियमों का वास्तविक दृष्टिकोण से प्रचार करना और प्रेम, सभ्यता, आदर, शिष्टाचार, सदाचार, सहनशीलता और संयम की शिक्षा देना इसका मुख्य उद्देश्य है मनुष्य बनना और बनाना।

२—सन्त महात्माओं और ऋषियों की वाणी को सरल, सुबोध और साधारण भाषा में प्रचार करना।

३—सामाजिक उन्नति कारक तथा देशहित कारक लेखों को भी स्थान दिया जायेगा।

४—किसी धर्म पन्थ या सम्प्रदाय के खण्डन सम्बन्धी लेख नहीं छापे जायेंगे।

५—यह पत्र प्रत्येक मास की १५ तारीख को प्रकाशित हुआ करेगा।

६—लेखों के घटाने बढ़ाने और छापने न छापने का अधिकार सम्पादक को होगा। लेख सम्पादक के नाम भेजे जांय।

७—ग्राहकों को पत्र लिखते समय ग्राहक नम्बर व पता साफ-साफ अवश्य लिखना चाहिए। उत्तर के लिये जवाबीकार्ड आना चाहिए वी० पी०पी० से पत्रिका नहीं भेजी जायेगी। इसका वार्षिक मूल्य २०.०० है।

८—यदि किसी मास का पत्र ठीक समय पर न पहुंचे तो पहले अपने यहां डाकखाने से पूछताछ करके वहां से जो उत्तर न मिले व अगला अंक निकलने के एक सप्ताह पूर्व तक कार्यालय में पहुंचने पर ही दूसरी प्रति बिना मूल्य भेजी जा सकेगी।

९—प्रबन्ध सम्बन्धी पत्र, ग्राहक होने की सूचना, मनीआर्डर आदि मैनेजर के नाम से भेजनी चाहिए। मनीआर्डर कूपन पर अपना पता साफ-साफ लिखना चाहिए। और पते की तबदीली भी।

—प्रकाशक

R. S.

ओ३म पूर्णमद पूर्णमिदः पूर्णात्पूर्णमदुच्यते
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णं मेवावशिष्यते ॥

No 30-1 "
No 2/40-1 "
(
110.40 -

मनुष्य बनो

वर्ष ३८	नवम्बर १९६९	अङ्क २

शब्द

हम न आये आप से, और आप से जाते नहीं।
लाया जो ले जायेगा, भव दुःख से घबराते नहीं ॥१॥

रहते हैं निर्द्वंद हँसते, खेलते दिन रात हम।
होगा क्या कल आज चिन्ता, अपने चित लाते नहीं ॥२॥

सुख हमारा रूप है, सुख में कहाँ दुख का पता।
मिट गया अपना भरम, औरों को भरमाते नहीं ॥३॥

प्रेम के मारग में आये, दोष दृष्टि छिन गई।
छोड़ कर अनुराग काई, रागनी गाते नहीं ॥४॥

राधास्वामी जपते हैं, बस राधास्वामी धाम में।
राधास्वामी नाम पाया, जम का भय खाते नहीं ॥५॥

—:०:—

R. S.

शब्द

'ये चोला इक दिन छूटेगा' ।।

१ पाप पुण्य का भरा कुम्भ ये-चौराहे पर फूटेगा··· ये चोला०
२ जिनको गुरु का संग मिला नहीं–धर्मराज फिर लूटेगा ,,
३ जिस गरदन को अकड़ाता तू–इसका भी मन टूटेगा··· ,,
४ छिप छिप चोरी यारी करता–इक दिन फाण्डा फूटेगा ,,
५ पीना खून गरीबों का तू–तुमको भी जम कूटेगा··· ,,
६ चार दिनों का जीवन है यह–काल गला तेरा घूटेगा··· ,,
७ रखकर चिता पर तुझको जाते–हर एक तुमसे रूठेगा··· ,,
८ तिनका टूटा रिश्ता टूटा–चक्र से छूटेगा··· ··· ,,
९ कौन बनेगा आखिर तेरा–जब तू आँखें नूटेगा··· ,,
१० दान दिया ना, भजन किया ना–ईश्वर तुमसे रूठेगा ·· ,,
११ गुरु किया ना नाम लिया ना–'गाफिल' अब कैसे छूटेगा ,,

———

शोक सन्देश

श्री देवी प्रसादजी कुशवाहा ग्राम हकीमनगर चोवेपुर कानपुर, ३१-१०-८९ को दोपहर बाद अपना शरीर छोड़ परलोक सिधार गये हैं। आप मनुष्य बनो पत्रिका के बहुत पुराने ग्राहक थे तथा परमदयाल जी महाराज के प्रिय शिष्यों में थे मालिक से कामना है कि उनकी आत्मा को शान्ती प्रदान करें एवं उनके परिवार जनो को इस असहाय कष्ट को सहने की शक्ति प्रदान करें। —सम्पादक

पत्र द्वारा सत्संग

(परम हजूर मानव दयाल जी महाराज)

लोग कहते हैं कि पूर्ण गुरु कठिनाई से मिलता है, मैं कहता हूं कि अधिकारी शिष्य बिरला ही होता है। मैंने कई बार सत्सगों में और मासिक सन्देशों में बताया है कि गुरु शिष्य को नहीं बल्कि शिष्य गुरु को पूर्ण गुरु बनाता है। यूँ तो गुरु और शिष्य सद्गुरु और सत्सगी सर्वाधार पूर्ण परमतत्व दयाल पुरुष के अंश हैं और उनमें पूर्णता की क्षमता है। अन्तर केवल इतना है कि सद्गुरु अपने ही पूर्ण अंश सत्संगी को चेताने के लिए सीधा अनामी धाम से आता है, जबकि सत्संगी अनेक जन्मों से गुजरता हुआ सद्गुरु को पहचानता है और उसी में विलीन हो जाता है। इसी सम्बन्ध में कबीर साहिब ने लिखा है :—

'पहले दाता शिष्य भया, तन मन अरपा शीश।
पाते दाता गुरु भया, नाम दिन्हा बख्शीश ॥'

इसका अर्थ स्पष्ट है कि अधिकारी शिष्य सद्गुरु को पहचान कर और उसकी वाणी से प्रेरित होकर उससे सच्चा प्रेम करता है अपने आपको खो बैठता है और अन्त में प्रीतम जैसा हो जाता है। इसी खो बैठने को ही 'तन मन अरपा सीस' कहा गया है। ऐसे अधिकारी शिष्य को को पाकर सद्गुरु उसे सच्चा ज्ञान बिना किसी मूल्य के अनायास दे देता है। जब तक ऐसे अधिकारी सत्सगी नहीं मिलते, तब तक अवतार का अवतारत्व और सद्गुरुत्व गुप्त रहता है। अधिकारी सत्संगी अपने सच्चे प्रेम और परमभक्ति से सद्गुरु के इस गुप्त भाव को प्रकट करने में सफल हो जाता है।

आपका फकीरमय
मानव

चेतावनी

काम जो करना हुआ, चित दे उसे करते रहो ।
छोड़ो दुविधा दुरमति, दुश्चिताई से डरते रहो ॥१॥
यह समझलो तुम हुये, जैसा किया कर्म और विचार ।
अपनी करनी पार उतरनी, है यही उपदेश सार ॥२॥
सोचो अपने मन में, औरों से न पूछो बात को ।
बच के चलना दूर करके, मनके सब उत्पात को ॥३॥
एक चित होकर करो सुमिरन भजन दिन रात तुम ।
करनी से हो लगन सच्ची, कथनी को दो मात तुम ॥४॥
सहज में साधन हो, कठिनाई की चिन्ता छोड़कर ।
काम मैं अपने लगो, बातों से मुंह को मोड़ कर ॥५॥
जो करो पूरा करो, करना हो जो वह करलो आज ।
भक्ति मुक्ति योग युक्ति, का सजालो विमल साज ॥६॥
राधास्वामी की दया से, जन्म अपना लो बना ।
गुरु की सत संगत करो, सब पूरी होगी कामना ॥७॥

(गताँक पृष्ठ ३६ से आगे)

वह आप फंसता है। जो दूसरों को लूटता है वह आप भी लूटा जाता है। मनुष्य ने पशुओं को अपने आधीन बनाया और परिणाम यह हुआ कि खुद भी इन पशुओं के आधीन हो गया। अपनी समझ से तो वह समझता है कि मनुष्य स्वामी है और सब सेवक हैं। पर वास्तविक रूप में देखा जाय तो वह स्वयं भी पशुओं का सेवक और आधीन हो रहा है और अपने मनुष्यपने से कोसों दूर जा पड़ा है कि पशुओं के जीवन को अपने जीवन का बहुत बड़ा अंग मान रहा है। धिक्कार है ऐसी मानवता पर ! लानत हैं इस मानवीयशील पर !!

अज्ञानी मनष्य अज्ञानता का इतना शिकार हुआ कि पशुओं की श्रेणी से भी गिरकर मनुष्य का शिकार बना हुआ है। एक मनुष्य भी संसार में ऐसा न होगा जो दूसरे मनुष्य को मार कर न खाता हो। कोई हाकिम बनकर दूसरों पर शासन करता है और कोई नौकर रखकर उनकी सेवा का आप फल भोगता है। जिस प्रकार गाय को रखकर उसका दूध, घी आप हड़पता है। वैसे ही एक ही व्यक्ति हजारों का अफसर बनकर उनसे रात-दिन सेवा लेता और केवल दो मुट्ठी चावल या अनाज देकर उनको अपने आधीन रखना चाहता है। न यह खुश न वह खुश। संसार में हर जगह अशान्ति फैली हुई है और मनुष्य इसी बेचैनी को शिष्टाचार और सभ्यता कहता है और जब कभी किसी मनुष्य को यह पराधीनता असह्य हो जाती है। तब तोप और बन्दूकों इत्यादि के आविष्कार से उनको डरा और धमका कर, घायल करके और मार कर अपने आधीन रखने की युक्तियाँ सोचता है।

क्या यह दशा अच्छी है। राम-राम कहो।

यह दशा केवल इस अहंकार रूपी दर्पण के हाथ लगने से

हुई है। आप तो नष्ट हो रहा है। अपने साथ अपने भाइयों को भी रात-दिन दुखी करता रहता है। यह मनुष्य की दशा हो गई है। और जो जितना सभ्य है, उतना ही अधिक अत्याचारी बना हुआ है। भाषा विज्ञान का अभिमान, जातीयता का अभिमान, विद्या कला कौशलता का अभिमान, वस्त्र और आभूषणों का अहंकार, रीति-रिवाज का अभिमार कहाँ तक कहें हजारों ही प्रकार के अभिमानमनुष्य को सता रहे हैं। वह एक क्षण के लिये भी नहीं सोचता कि इपका परिणाम क्या हो रहा है। संसार नरक का स्थान बन गया है। सुख और हर्ष कोसों दूर हैं। नर्क को कहाँ खोजते हो ? क्या मनुष्य की बुद्धि और अहंकार ने इस संसार को नर्क नहीं बना लिया है ! सोचो समझो, तब यह विषय भली प्रकार समझ में आवे।

—:o:—

आठवां वचन

अहंकार की दो किस्में

अहंकार बुरा है। अहंकार नाश की निशानी है। जिसने अहंकार किया वह ही मारा गया। मनुष्य हर प्रकार से इस पिशाच के हाथ से मारे जा रहे हैं। यह रोग है जो सब के हाड़ मांस को खा रहा है और कोई इसकी औषधि या उपाय नहीं सोचता। रोग असाध्य बन गया है और रोगी ऐसे अज्ञानी हो गये हैं कि अपना इलाज कराने से भी घबराते हैं।

ऋषि, मुनि, पीर, पैगम्बर,औलिया और सन्त महात्माओं ने जब देखा कि मनुष्य समझने वाला नहीं है तो इसके सुधार के उपाय सोचने लगे। यह अहंकारी था। उन्होने भी अहंकार ही से इसके इलाज की युक्ति निकाली। अहंकार का इलाज

अहंकार से भी सम्भव है। आग से जला हुआ मनुष्य आग से सेककर अपने फफोलों को आराम देता है। यह भी एक प्रकार का इलाज है। यह कभी न समझो कि आग का इलाज पानी ही है, बल्कि आग का इलाज आग से भी हो सकता है।

इस इलाज के दो उपाय सोचे गये हैं। प्रथम ईश्वर की भक्ति, दूसरे अपने आपे (निज स्वरूप) का ज्ञान। यह दोनों ही अहंकार की किस्में हैं। एक अहंकार गुणों से सम्बन्धित है, दूसरा अपने आपे या निज स्वरूप से सम्बन्धित है। इस पर तुमको गहरा सोच-विचार करने की आवश्यकता है।

मनुष्य ने चूंकि परवशता, पराधीनता और विवशता को अपना स्वभाव बना रखा है, उसे यह ध्यान दिलाया गया कि तू परवश ही बनना चाहता है तो फिर ऐसे पूर्ण स्वतन्त्र, पूर्ण तृप्त और पूर्ण निर्लिप्त की शरण ले जो इन बन्धनों और दोषों से मुक्त है। इसकी पूजा कर। उसी के स्मरण और ध्यान को दृढ़ कर ताकि विश्वास और विचारों की परिपक्वता होने पर उस उस निर्लेप की निर्लेपता तुझ में उत्पन्न हो जाय। उस समय तू मुक्त और अहंकार का रोग जाता रहेगा। धर्म और पन्थों की उत्पत्ति इसी विचार से हुई है और वह सच्चा है। जो उसका विश्वास रखता है, जो जिस विचार को रात दिन पकाता रहता है, जो विश्वास दृढ़ हो जाता है वह विश्वास और विचार की मूर्ति बन जाता है। जैसा ख्याल वैसा हाल। लड़के को कह दिया जाता है कि तू ब्राह्मण या क्षत्री है और वह आयु पर्यन्त ब्राह्मण या क्षत्रिय बना रहता है। लड़के को ख्याल दिया जाता है कि तू देवदत्त है और वह जीवन भर देवदत्त बना रहता है। यहाँ तक कि यदि कोई व्यक्ति किसी ब्राह्मण को क्षत्री कह दे तो वह उसी क्षण बिगड़ खड़ा होगा अथवा कोई व्यक्ति देवदत्त का नाम ले कर गालियां दे तो अभी

लड़ाई-झगड़े की नौबत आ जाती है। मगर सार क्या है? ब्राह्मणपना और देवदत्तपना विचार या ख्याल ही तो हैं। सिवाय ख्याल या विचार के वह हो क्या सकता है। मगर नहीं। अहंकार और ममत्व जब किसी भाव या विचार को लेकर वह परिपक्वकरने लग जाता है तो वही बनाकर छोड़ता है और उसमें वैसे ही भाव उत्पन्न हो जाते हैं। इस कारण मनुष्य को ईश्वर भक्ति का उपदेश दिया गया और उसे भक्ति के गुण समझाये गये। यह सब गुण उसमें शनैः-शनैः उत्पन्न होने लगे। ईश्वर का विश्वास ऐसा पैदा हो गया कि अब वह ईश्वर के अतिरिक्त अन्य किसी को सर्वशक्तिमान नहीं मानता चूंकि उसको ईश्वर की महिमा पहिले ही से बता दी गई थी कि वह किसी का आश्रित नहीं है। इसमें वह ही गुण स्वतः ही पैदा होने लगे और वह निर्लोप, चिन्ता रहित तथा शोक रहित हो गया। हिंसा अथवा दिल दुखाने की वृत्ति जाती रही। प्रेम व प्यार ने चित्त में वास कर लिया और वह स्वतः ही ईश्वर का रूप बन गया। यह सत मार्ग पर लाने का एक साधन कहते, हैं जिसे ईश्वर उपासना कहते हैं।

दूसरा मार्ग निज स्वरूप के अहंकार के दृढ़ करने का है। इसका नाम अहंग्रह उपासना है। गुरू अपने शिष्य को कहता है कि 'तू आप ब्रह्म है।' यदि उसमें पात्रता, सामर्थ्य और योग्यता है तो वह इन्हीं तीन शब्दों में ज्ञान के रहस्य को छुपा हुआ पायेगा और विशाल दृष्टि का और उच्च विचार का होकर सारे भेद को समझकर जिस समय अपने हृदय के आवरणों को हटा-हटा कर उसके अन्तर में सार तत्व का दर्शन करेगा उसका अज्ञान दूर हो जायेगा। उसके रहन-सहन में प्रत्यक्ष रूप में परिवर्तन हो जायेगा। लेकिन यह साधन है अति

कठिन। इसके अधिकारी कठिनाई से लाखों में एक-दो मिलेंगे कहने को तो एक बालक भी कहता है कि मैं ब्रह्म हूँ, मगर केवल कहने सुनने से कुछ नहीं होगा। इसका अभ्यास सहज नहीं है। इसके लिये बड़ा सूक्ष्म विचार और विशाल दृष्टि वाला बनने की आवश्यकता है। जब तक कोई व्यक्ति सर्वात्मिक, सर्व व्यापक और अद्वैत भाव न उत्पन्न करेगा, वह ज्यों का त्यों इसको समझ न सकेगा। पराधीनता के संस्कार, वासनाओं के भाव, विपशता और परवशता के विचारों को वह कहाँ तक दूर कर सकेगा। स्वभाव तो कुछ और ही तरह का बना हुआ है। इस दृष्टि से अपने आपे (निज स्वरूप) के अहंकार की ओर झुकना टेड़ी खीर है।

प्रत्येक व्यक्ति हर काम या हर ख्याल को चित्त नहीं दे सकता है। इस कारण से यह शिक्षा सीमितरहती है। विस्तार रूप में केवल भक्ति मार्ग की शिक्षा का क्रम चलता है।

भक्ति मार्ग के अहंकार की व्याख्या तो कर दी गई है, किन्तु सम्भव है कि अब तक वह समझ में न आई हो। इस लिये उसकी स्पष्ट व्याख्या में दो-चार बातें और भी सुना देने की आवश्यकता है।

एक लड़की का विवाह किसी मन्त्री के साथ हुआ। उसमें मन्त्राणीकहलाने और मन्त्री के गुणों में सम्पन्न होने की आदत आ गयी। वह मन्त्री नहीं है मगर मन्त्री से भिन्न भी नहीं है। वह उसी का अंग है। मन्त्री बादशाह नहीं होता लेकिन बादशाह की सगत और सेवा के लाभ से उसमें बादशाही आदतें आ जाती है।

एक शेर है जिसका अर्थ है :—

मर्दान खुदा खुदा नहीं हैं।
लेकिन उससे जुदा नहीं है॥

ठीक इसी प्रकार ईश्वर पूजा के प्रभाव से ईश्वर के गुण जीव में उत्पन्न हो जाते हैं। कोई कहाँ तक उदाहरण दे यह ही एक-दो दृष्टान्त समझाने को काफी हैं।

फिर भी इस मार्ग में यह त्रुटि है कि भक्त और भगवन्त का भेद शेष रहता है। जहां भेद है वहाँ त्रुटि की जड़ न कटेगी। कभी-कभी वह फिर विकार उत्पन्न करेंगी। दो में सदा दुई रहती है और द्वैत भाव भारी दोष है। पुजारी का पूज्य होना असम्भव है। आज हमारी बातों से कोई सहमत न होगा परन्तु विशाल हृदय होने पर कल वह उसे सच स्वीकार करेगा।

इसी प्रकार अपने आप को पूजा भी त्रुटि रहित नहीं है। वह भी योग ही है। जो व्यक्ति अहम् ब्रह्म कहता है वह ब्रह्म के साथ अहम पने का रोग साथ रखता है। यह अहंकार हो वे दर्पण है जो तरह-२ की सूरतों को दिखाता रहता है। वहाँ भी दुई की जड़ भली प्रकार नहीं कटती। जो अनलहक कहता है वह 'हक' के साथ 'अना' को सम्मिलित रखता है। अना हा तो असली रोग है।

हां, दोनों ही मार्गों से अन्तःकरण के आवरण अवश्य हटते रहते हैं। इससे हमको इन्कार नहीं है। लेकिन सूक्ष्म त्रुटि या नुक्स फिर भी शेष रह जाता है। अभी इन दोनों को किसी सच्चे गुरू की संगत और किसी पूर्ण वैद्य से रोग के इलाज कराने की आवश्यकता रह जाती है।

ईश्वर के पुजारी इश्वर के अभिमान को नहीं छोड़ते। ब्रह्म के पुजारी से ब्रह्म का अहंकार दूर नहीं हो सकता है। फिर खराबी रही या नहीं। भक्ति मार्ग वाले तो ईश्वर की शान में मुंह से कोइ असलियत के शब्द निकालने में असभ्यता समझते हैं इसलिये इसके यहाँ तो असलियत तक पहुँचने की कोइ सुरत

ही नहीं है। ये तो जहाँ फंसा है वहाँ फंसा रहना ही श्रेष्ठ समझता है। दूसरे मार्ग में अहंकार ही अहंकार है। वह एक के अनेक रूप होने की कल्पना से चिढ़ता है। फिर बेहतरी की सूरत यदि पैदा भी हो तो किस तरह? ईश्वर भक्त तो भक्ति के अहंकार का इतना प्रेमी हो जाता है कि पूर्ण पुरुष की बात तक सुनना नहीं चाहता ब्रह्म उपासक में अपने आपे का सूक्ष्म अभिमान इतना घुस जाता है कि वह अपने से श्रेष्ठ किसी को जानता ही नहीं। यह सच है कि भक्ति मार्ग के आचार्यों के विरूद्ध ज्ञान मार्ग के आचार्य असलियत को हृदयाँगम कराने की कोशिश अवश्य कर गये हैं, मगर उनका प्रयत्न असफल रहा और अपने आपे के अहंकार ने उनके शिष्यों का गला इस प्रकार दबोच लिया कि जहां अड़े उससे आगे बढ़ने की कसम खायी और कोरे बालक ज्ञानी बन गये।

सन्तों ने ये दशा देखी और रोग का इलाज करने के लिये सच्चे वैद्य की हैसियत से प्रगट हुए।

—:०:—

नवां वचन

दो प्रकार के पंथ

जात और सिफत दो पृथक शब्द हैं। इनके समझने की बड़ी आवश्यकता है। जब तक ये समझ में न आवेंगे तब तक हमारे मन्तव्य के समझने में गलती और अनसमझी का अंदेशा भय रहेगा।

अहंग्रह उपासना जात की उपासना है। भक्ति करना गुणों में चित्त देना है। जात काल है। सिफत माया है। इसलिये ये दोनों पन्थ या तो काल मत हैं या माया मत हैं।

काल से यह जगत उत्पन्न हुआ है। माया ने इसमें प्रपंच का जाल बिछाया है। उदाहरण रूप से स्त्री जात है माँ,बहिन फूफी, ताई, बहू, बेटी ये सिफतें (गुण) हैं। सिफत में नाश मानता है। जात नाशवान नहीं है। दूसरा उदाहरण ये है कि तुम मनुष्य हो यह तुम्हारी जात है। लेकिन व्यापार करने से तुम व्यापारी, लेख लिखने से लेखक, बहिन ब्याह देने से साले स्त्री करने से पति, शिक्षा देने से गुरू, शिक्षा पाने से शिष्य बनते हो ये सब सिफतें (गुण)। इनसे तुम्हारे मनुष्यपने में अन्तर नही आता। सिफत (गुण) निसन्देह बदलती रहती है। और ठहरती नहीं है। दीवान उस समय तक दीवान है, जब तक उसे दीवानपन के अधिकार प्राप्त हैं। दीवानपन के जाते ही वह दीवान नहीं रहा, लेकिन मनुष्य अब तक है।

इस प्रकार ईश्वर के उपासक ईश्वर को दयालु, कृपालु, विधाता और सब कुछ कहते हैं और ये सब सिफतें (गुण) हैं। सिफत (गुण) माया है। इस दृष्टि से इश्वर के ऐसे समस्त उपासक वास्तव में माया मत के अनुयायी हैं और इसीकारण शाक्तिक हैं। शाक्तिक उनको कहते हैं जो शक्ति अर्थात सिफतों के उपासक हैं। इस कारण से शाक्तिक धर्म दुनियाँ का सबसे अधिक प्राचीन मत है। इस शब्द को सुनकर वैष्णव आदि नाक भौ सिकोड़ेंगे, लेकिन उनसे कोई पूछे तो सही कि ईश्वर के हजारों और विष्णु के सहस्रों नाम सिफत ही तो हैं। सिफत शक्ति नहीं तो क्या है ? तब उनकी समझ में आयेगा कि वह हजार इन्कार करने पर भी शक्ति की पूजा करते हैं। इन पक्तियो पर गौर करने से स्वयं ही साधारण बुद्धि का मनुष्य समझ जायेगा कि दुनियाँ के सब धर्म, मत या पन्थ माया मत के उपासक और षक्ति के पुजारी हैं उनकी भक्ति चूंकि सिफत

माया और शक्ति के नाम के साथ है, इनको ज्ञान के नुक्ते को समझ बहुत देर में जाकर आयेगी । यह माया मत हैं ।

अब काल मत की ओर चलो । काल सृष्टि का सार जौहर और तत्व है सार, तत्व और जौहर जात है । जात (सार तत्व) का दर्जा माया से बढ़कर है । ज्ञानी,ध्यानी अहंग्रह उपासक, वेदान्ती, अद्वैतमन वादी, सूफी ये सब के सब जात(सार-तत्व) की पूजा का दम भरते हुये काल मत के अनुयायी हैं । इनकी महानता है । इनका महत्व स्वीकार किये जाने योग्य है इनके सिद्धान्तों का वर्णन व रहस्यों की समझ और बारीकियों के निर्णय प्रशंसनीय हैं और इससे किसको इन्कार हो सकता है । यह माया मत से ऊँचे दर्जे का मत है । लेकिन उनका यह ख्याल रख लेना चाहिए कि जहाँ जात (सार तत्व) है वहाँ ही तो सिफत (गुण) है । जहाँ काल है वहाँ ही तो माया है । जात (सार तत्व) का ख्याल माया के वहम को हमेशा पैदा करेगा । ये प्राकृतिक नियम है । मनुष्य दुनियाँ में आया नहीं किवे किसी का भाई बहनोई साला, स्वामी, सेवक बना नहीं । जात (सार तत्व) के साथ सिफत (गुण) का रहना लाजिमी है । अद्वैत के पल्ले से द्वैत के काँटों का लटकते रहना आवश्यक बात है । ब्रह्म से माया को किसने पृथक किया शिव से शक्ति कब अलग हुई ! जहाँ आत्मा है वहां शरीर है । और जहाँ शरीर है वहाँ आत्मा है । इसलिये लाख अद्वैत वाद पर जोर देते हुए अद्वैतवादी स्वयं ही द्वैतवादी बहते हैं । अद्वैत का समर्थन अद्वैत का खण्डन है । अद्वैत ही में द्वैत हैं और द्वैत की गुंजायश कहाँ हैं !

सन्तों नें ये दशा देखकर अपनी तालीम का सिलसिला चालू किया । ऐसा मार्ग निकाला जिसे न हम द्वैत कहते हैं न

अद्वैत कहते हैं। एक में अनेक है। ये प्रकृति का माना हुआ नियम है इसको भली प्रकार समझकर फिर यदि राधास्वामी मत का ध्यानपूर्वक अध्ययन किया जायेगा तो वह भली प्रकार समझ में आयेगा।

—:o:—

दसवाँ वचन

दयाल मत

माया मत और काल मत की समझ सम्भवतः अब किसी अंश तक आ जानी चाहिए, यद्यपि यह सुगम नहीं है। काल में अहंकार का दोष रहता है और यही अनेकता या जगत के कारोबार का प्रवर्तक भी है। इसी में घटनाऐं होती रहती हैं इसमें समानता है भी और नहीं भी है। यह इतना सूक्ष्म तत्व है कि इसकी व्याख्या कठिन हो जाती है और आदमी को इस का समझना भी कठिन हो जाता है। काल स्वय अद्वैत का तत्व है जिससे द्वैत की सुगन्धि की लपटें उसको बिना हानि पहुँचाये ही उड़ती रहती है। काल एक है और उस एक की दृष्टि से उसे सार तत्व वर्णन किया गया है। मगर वह असल में एक ऐसी सत्ता है कि जिस तक मन और बुद्धि की पहुंच नहीं होती और इस हालत में चूंकि उसकी व्याख्या नहीं की जा सकती है, उसे परम तत्व स्वीकार करने की अत्यन्त आवश्यकता होती है।

काल एक समुद्र है जिसमें लहरें उठती हैं। समुद्र तो समुद्र ही है। समुद्र की समझ तक को उसमें अद्वैत है लेकिन जहाँ दृष्टि उसकी लहरों की ओर जाती है, द्वैत की सत्ता का

उसमें भान होता है । समुद्र में अद्वैत है और लहरों में द्वैत है ।

अद्वैत की दृष्टि से काल को सार तत्व कहा गया है और द्वैत की दृष्टि में उसी से माया का प्रादुर्भाव होता है जो समुद्र है वही लहर है जो ब्रह्म है वही माया है और इस दृष्टि से जीव और ब्रह्म की एकता है । यह काल ही ब्रह्म है जो सर्वव्यापक है और जहां तक रचना है वहाँ तक इसकी सीमा हैं ।

इन दोनों शब्दों, काल और माया का इतना विस्तृत वर्णन है कि जो कुछ कहा जाता है वह सब इन्हीं के पेट और लपेट में आ जाता है ।

काल इकाई है और दहाई, सैकड़ा, लाख, करोड़ माया, है जितनी गिनती निकलती है वह सब इकाई ही पर निर्भर हैं । इकाई एक है और दहाई, सैकड़ा,लाख,करोड़ और नील,पदम, संख, महासंख अनेक हैं । इकाई के साथ शून्य लगाने से वह बढ़ती हुई दिखायी देती है, मगर वास्तविक रूप से शून्य का कोई मूल्य नहीं है । शून्य इकाई के बिना कोई हैसियत नहीं रखता । यह इकाई ही चक्कर खाती हुई गिनती की समस्त संख्याओं में सम्मिलित रहती है । इसे निकाल दो तो फिर कुछ नहीं रहता । जो कुछ इस रचना में प्रतीति होता हैं वह यहां है । जब तक गिनती को गिनती कहा जाता है तब तक वह अद्वैत रहता है और जहाँ हिसाब-किताब और लेखा की बारी आयी, उसमें सीमा और असीमा दोनों प्रकार की मदें शामिल होने लगती हैं । उस दृष्टि से गिनती सीमित भी हुई और असीमित भी हो गयी । हिसाब तो हिसाब ही है, चाहे वह संख और नील पदम का हिसाब हो चाहे एक-दो चार का हिसाब हो । हिसाब में सीमा और असीमा दोनों ही हैं । उनकी उस हैसियत को कोई नहीं छीन सकता ।

ठीक इसी प्रकार इस रचना के जिस सामान पर दृष्टि डालो, उसमें दोनों सीमा और असीमा सदा मौजूद रहती है। जहां हद बन्दी है वहाँ माया हैऔर जहाँ बेहदी है वहां काल हैं।

समुद्र तो समुद्र ही हैं। वह विस्तृत क्षेत्र में भी रहता हैं और एक-एक बूंद में भी मौजूद हैं।

प्रकाश तो प्रकाश हैं। परमाणु की चमक बिजली की दमक और जुगनू की जगमगाहट भी प्रकाश हैं और सूर्य या सूर्य से और भी अधिक किसी प्रकाशवान वस्तु के प्रकाश को भी प्रकाश कह सकते हैं।

हवा तो हवा ही हैं। आंधी का प्रवल झोंका भी हवा हैं और प्रातःकाल के जो धीम-धीमे झौंके बहते हैं वे भी हवा हैं आदि-आदि। इसी प्रकार और सब वस्तुऐं अर्थात आग,मिट्टी पानी और इनसे मिश्रित वस्तुओं को भी समझ लो। वह अपने मण्डल में एक और अनेक, सीमित और असीमित दोनों हैं।

उदाहरण असंख्य दिये जा सकते हैं। सोना अपने स्वर्ण मण्डल में एक है लेकिन अंगूठी, झूमर, कड़े, कंगन, पहुंची, हार ,गुलूजन्द, बाजूबन्द जोशन आदि आभूषण और कटोरा, ग्लास, तश्तरी और थाली आदि बर्तनों की दृष्टि से अनेक हैं। मिट्टी अपने मिट्टी के मण्डल में एक हैं और बर्तन भाड़े, कंकड़-पत्थरलाल, हीरे जवाहरात, मकान, महल और दूसरे सामान के ख्याल से अनेक दिखायी देते हैं। इस तरह जिस वस्तु को देखोगे हर एक वस्तु में अद्वैत और द्वैत दृष्टिगोचर होगा। कोई स्थान उनसे खाली नहीं हैं और न हो सकता हैं। अद्वैत दृष्टा को हर जगह अद्वैत दिखायी देगा। और द्वैत वादियों को हर जगह द्वैत के दृश्य आँखों के सामने रहेंगे। यह अद्वैत काल हैं और द्वैत माया हैं। यह दोनों के नाम हैं और

रूप दोनों ही द्वैत के स्थान से सम्बन्ध रखते हैं।

इस काल और माया के विभिन्न नाम हर पन्थ में आये हैं। काल को पुरुष कहा गया है और माया को प्रकृति का नाम दिया गया है। काल को रूह (आत्मा) और माया को मादा (स्थूल पदार्थ) बताया गया है। उपनिषद जोरदार शब्दों में उन्हीं के गीत गाते हुए जिज्ञासुओं के आध्यात्मिक भावों के उभारने का प्रबन्ध करते है।

समस्त पन्थों में या तो इस प्रकृति की पूजा है या पुरुष की उपासना पर जोर दिया गया है। अब गौर करना है कि जहाँ एक होगा वहाँ अनेक अवश्य होगा। इकाई के साथ दहाई और सैकड़ा आदि अवश्य ही रहेगा। उससे उसको पृथक करना कठिन काम है। योगी हजार योग का साधन करके समाधि लगायें मगर जब उत्थान होगा वह जहाँ के तहाँ आ जायेंगे। चढ़ने वाला गिरता है। बैठने वाला उठता है। सोने वाला जागता है जागने वाला सोता है। एक हमेशा अनेक के झगड़े में फँसा रहेगा। ज्ञानी हजार विचार करे एक समय में अद्वैत के सिद्धान्त पर बुद्धि को एकाग्र करे, लेकिन क्या एकाग्रता के पश्चात उसकी चित्त की वृत्ति अनेक के क्षोभ से स्वतन्त्र हो सकती है।

आपेक्षिक अवस्थाओं के मंडल में रहने वाले आपेक्षिक मद्दों से ऊपर नहीं आ सकते। यह मानी हुई बात है।

माया मत और काल मत की यह दशा है।

सन्त मत को दयाल मत कहा जाता है। यह क्यों? क्यों कि वह मनुष्य की दृष्टि को आपेक्षिक सम्बन्धों से ऊँचे लाने की व्यवस्था करता है। ऊँचा और नींचा यह भी तो आपेक्षिक शब्द है यहाँ भी तो उसी बात के डर की सम्भावना है जिसका

जिक्र ऊपर किया गया है। यह सवाल हर व्यक्ति कर सकता है लेकिन यहाँ एक रहस्य है जो सच्चेजिज्ञासू को पहिले समझ कर तब आगे बढ़ने का यत्न सोचना चाहिए।

वह यह हैं कि सन्त मत न पूरा ज्ञान मार्ग हैं न पूरा उपासना मार्ग हैं और न उसे कर्मकाण्ड का ही मार्ग कहा जाता है. बल्कि वह ज्ञान और उपासना का खण्डन करता हैं बल्कि उसका मार्ग ज्ञान और उपासना के बीचोबीच चलता हैं। कहने का मतलब हैं कि वह न दीन दुखियों का मार्ग हैं और न इनसे पृथक ही हैं। वह ज्ञान और उपासना को शामिल रखते हुए कर्म और करनी को अपना साथी बनाता हैं यह एक तरह पर अमली मार्ग है जिसमेंज्ञान और ज्ञान का प्रेम दोनों ही शामिल हैं। पहिले तो यह मनुष्य के विचारों को निर्मल कर देता है। ताकि मन में भ्रमात्मक विचार न रहें, वर्ना यह विचार आगे चलकर परेशानी का सामान पैदा करेगा और फिर मनुष्य के वहक जाने का भय लगा रहेगा। एक बात तो यह हुई। अब दूसरी बात जो प्रत्येक व्यक्ति को समझनी चाहिए वह है कि सन्त मत या राधास्वामी पन्थ अपने अभ्यास द्वारा मन के घाट बदलने और बदलाने की युक्ति सिखलाता है और जहाँ यह युक्ति हाथ आ गई फिर आपेक्षिक बातों के भय हृदय से सदा के लिये दूर हो जाते हैं।

खबरदार ! जब तक उस रहस्य को न समझ लो आगे की ओर कदम न बढ़ाओ वर्ना धोका खा जाओगे। इसी एक रहस्य पर दारमदार है राधास्वामी मत की समझ का। अगर समझ लिया तो सम्भव है कि तुम उससे आध्यात्मिक लाभ उठा सको। और इसी जीवन में अपने आप को कुछ का कुछ बना सको और यदि नहीं समझा, तो फिर या तो वाचकज्ञानी

बन जाओगे। या अभ्यास और साधन करके सिद्धि शक्ति और चमत्कारों के लपेट में आकर फंस जाओगे, और या अपने पन्थ के पाबन्द होकर पक्षपाती संकीर्ण, हृदय और कट्टर होकर दूसरे सामाजिक धर्मों में अनुयाईयों की तरह 'पर उपदेश कुशल बहुतेरे' वाली मिसाल तुम पर लागू हो जायेगी। यह चार प्रकार के भय हैं जिनसे बचने और बचकर रहने की अत्यन्त आवश्यकता है। लोग आजकल राधास्वाती मत में शामिल तो हो गये मगर हृदय के कट्टर और पक्षपाती बन गये। सकीर्णता और पक्षपात आध्यात्मिक रोग है। मालिक आशीर्वाद दे कि मनुष्य को इसकी हवा न लगने पावे वरना राधास्वामी मत वाले भी मतवाले होकर अपनी बढ़ाई करते हुए दूसरों को तुच्छ समझने लगेंगे और दिल दुखाने के अपराधी होकर राधास्वामी मत के असली ध्येय से वंचित हो जायेंगे। रहस्य यह कि :-

"राधास्वामी मत सत्संग और अभ्यास कराते हुए अभ्यासियों के मन के घाट को बदल कर सुरत के घाट पर लाता है और मन के जीवन के बदले सुरत के जीवन का अधिकार प्रदान करता है।"

लेकिन कठिनता यह है कि हजारों में एक आदमी ऐसा नहीं मिलता जो मन के घाट बदलने के रहस्य को समझता हो मन चंचल है मन में चंचलता और निश्चलता है जब तक मन मन के स्थान में रहता है, मनन शक्ति के कारण चंचल बना रहता है मगर जब यह मन सुरत के घाट पर बैठता है तब यह निश्चल होजाता है या निश्चल होने लगता है। इसको केवल एक बार समझ लो और सदा के लिये तुम मन की मनन और चंचलशक्ति पर विजय प्राप्त करोगे।

यह मन ही है जो अहंकार के स्थान पर बैठकर तुम को

अहंकारी, लालच के स्थान पर लालची, काम के स्थान पर बैठकर कामी, क्रोध के स्थान पर बैठकर क्रोधी और मोह के स्थान पर बैठकर मोही बना देता है। यह मन ही है कि जो तुमको दीनता के स्थान पर बैठकर दीन, निर्लोभता के स्थान पर बैठकर निर्लोभी और अकाम के स्थान पर बैठकर अकामी और अक्रोध के स्थान पर बैठकर अक्रोधी और अमोह के स्थान पर बैठकर अमोही कर देता है। तुम यदि थोड़ा प्रयत्न करो तो इसे अपने प्रतिदिन के कारोबार में देख सकते हो। यही तुम को अपनी-अपनी बैठक बदल-बदल कर सदाचारी, दुराचारी सावधान असावधान बनाता रहता है। जो कुछ है इसी का खेल है। इतना तो तुम समझ सकते हो और शायद इस सचाई को मानोगे, लेकिन अभी तक विषय स्पष्ट नहीं हुआ। आगे चलकर हम और स्पष्ट किये देते हैं।

एक व्यक्ति को उन्माद का रोग हो गया है। उसका कारण क्या है? कारण यह है कि मन ने इस शरीर में ऐसी बैठक बना ली है जिसमें मनन शक्ति का अधिक अभाव है। अब वह बेतुकी हाँकता है निडर हो गया है किसी की परवाह तक नहीं करता। न उसे मरने का डर है, न जीने की इच्छा है। आदमी तो आदमी ही है उसमें यह दोष कहां से आ गया? इसका कारण बता दिया गया। बहुत से उन्मत्त तुमको ऐसे मिलेंगे जो दिन में दस-बीस, पच्चीस सेर खाना खा जाते हैं और रात दिन खाते रहते हैं मगर तृप्ति नहीं होती, मगर तुम तो नियत मात्रा से अधिक भोजन खा लो और देखो कि स्वास्थ्य का क्या हाल होता है। सम्भव है तुमको इस पर विश्वास न आये, मगर कभी-कभी ऐसे रोगी किसी-किसी जगह दिखाई दे जाते हैं। तुम किसी अनुभवी वैद्य से पूछकर सन्तुष्टि कर सकते हो इसी तरह किसी-किसी को ऐसा रोग हो जाता है कि रात-दिन

बहुत अधिक पानी पीते रहते हैं, मगर प्यास कभी नहीं बुझती । मैंने ऐसे आदमी भी देखे हैं कि काम के आधीन होकर रात-दिन बहुत सी स्त्रियों से काम भोग करते हैं और फिर भी उनकी तृप्ति नहीं होती । इन सब में यह शक्तियाँ कहां से आ जाती हैं ? वही कारण है कि मन का घाट बदला हुआ है ।

पूरब के जिलों में एक कहावत है । जब वह किसी को बदला हुआ पाते हैं तो यह कहते हैं कि 'इसके मन का कोठा बदल गया । मन अपने कोठे से दूसरे कोठे में चला गया ।' और यह शब्द बहुत स्पष्ट है । व्याख्या की आवश्यकता नहीं है ।

मन जब तक अपनी असली हालत में रहता हैं तब तक वह सोचने-समझने के लिये बाध्य रहता हैं । और इसी अधिक सोचने-समझने के अभ्यास में इसकी चंचलता का रहस्य छुपा हुआ है । वह भय के समय कर्त्तव्य विहीन हो जाता हैं । निर्भयता की दशा में शान्त रहता हैं ।

दयाल मत इस मन के कोठे बदलने की युक्ति सिखाता है लेकिन वह युक्ति इस प्रकार की नहीं है कि मन प्रारम्भिक अवस्था में ही मर जाय । ये अत्यन्त काम की वस्तु हैं । इससे हर मण्डल में काम लेना आवश्यक है । ये जीवित रहे मगर ये ऐसी जगह जरूर पहुंचा दिया जाय कि चंचलता की आदत को छोड़ दे । लोक और परलोक का काम भी करता रहे और साथ ही साथ उसको आन्तरिक सुख भी मिलता रहे । यह स्थान सुरत का स्थान है जिसका पता इस जमाने में राधा-स्वामी मत देता है ।

बात सहज हैं । कर्त्ता उस्ताद करता शार्गिर्द ! जो करते हैं वह समझते हैं, जो नहीं करते वह नहीं समझते ।

सुरत के स्थान के भेद न जानने से प्रायः अभ्यासी और साधक एक स्थान पर खिंच जाते है जिसने अलल टप्प ढंग में अभ्यास तो किया मगर सुरत के स्थान या स्थानों का उसे पता नहीं मिला तो परिणाम यह हुआ कि वह किसी विशेष आन्तरिक स्थान के प्रकाश को देखकर उसमें अटक रहा। उस में सिद्धि शक्ति तो आ जायेगी क्योंकि एक जगह पर खिंच गया है, परन्तु व्यर्थ, क्योंकि आत्मिक उन्नति रुक गई। अब उसका मन न नीचे उतरता है, न उस विशेष स्थान से ऊपर जाता है। बीच में लटका हुआ है। उससे किसी को भी आत्मिक लाभ नहीं पहुंचता। यह दशा कदापि अच्छी नहीं है। जब तक कोई अनुभवी आध्यात्मिक गुरू न मिलेगा उसकी दशा कभी न बदलेगी।

राधास्वामी मत इसी कारण से क्रमशः सुख के स्थानों का पता बताकर अपने अभ्यासियों को उन्नति का राज मार्ग दिखाता रहता है कि कोई किसी जगह न अटकने पावे, वर्ना उसका अकाज हो जायेगा और वह उन्हीं उन्मत्तों में शुमार किया जायेगा जिनकी एक मिसाल ऊपर दे दी गई है।

यह इस दयाल मत की विशेषता है।

उन्मत्त की मिसाल में जो मन के कोठा बदलने की व्याख्या वर्णन की गई है उस पर गौर करने और समझने से यह अच्छी तरह विश्वास हो जायेगा कि जो लोग विधि पूर्वक अभ्यास करेंगे वह अभ्यास के स्थानों पर विजय पाते हुए आत्मा और शरीर के आपेक्षिक मण्डलों से स्वतन्त्र हो जायेंगे और वह जात (सार तत्व) व सिफत (गुण) दोनों के मंडलों को तै कर जायेंगे। और जो खतरे (भय की समाधि के उत्थान से योगियों और ज्ञानियों को हुआ करते हैं वह उनसे सदा के लिये सुरक्षित हो जायेंगे। —: ०:—

प्रवचन

परमदयाल फकीर चन्द्र जी महाराज !

(२८-१-६४)

जो मेरी समझ में आया है वह कहता हूँ मगर मैं ऊंचा बोलता हूँ । साधारण लोग मेरी बात नहीं समझ सकते वह ऐसे समझो जैसे कि आप बूढ़े । आप बच्चों का खेल खेल नहीं सकते । इसी प्रकार मेरी दशा है । मुझसे अब अ, ई नहीं कही जाती ।

मोती क्या है ?

मेरी नजर में आया है । वह मोती क्या है ? मैंने जो समझा वह कहा । वह है अडोल गति, अभयगति, निर्बैरगति परमशान्ति की अवस्था । इसी की खोज सारी दुनियाँ जाने-अनजाने करती रहती है । सवाल है कि वह गति या वह अवस्था मिलती कैसे है ?

है तिल के तिल के तिल भीतर विरले साधू पाया है ।

वह अभयगति या अडोलगति जब भी किसी को मिलती है तिल के भीतर मिलती है । तिल दोनों आँखों के बीच में स्थान हैं इसको योग की भाषा में तीसरा तिल बोलते हैं उसमें हमारा जो जीवन हैं उसके अहसासात (भान बोध) रहते हैं । शरीर को पीड़ा होती है या चींटी काटती है या घाव में कष्ट होता हैं तो नाड़ी संस्थान (Nervous System) तुरन्त दिमाग को पता देता हैं । हमारे दुख सुख के जो भान बोध हैं उनका केन्द्र (Centre) यह तल है । वैद्यक या डाक्टरी

विज्ञान (Medical Science) भी यही कहता है कि यहाँ मानसिक केन्द्र (Mental Centre) हैं। सन्तों के यहाँ भी वही बात है। मेडीकल साइन्स में दिमाग के दो भाग हैं : (१) भूरा (२) श्वेत। भूरे भाग में खास-खास सूक्ष्म भाग (Cells) बने हुए हैं। डाक्टरों के सिद्धान्त के अनुसार जब बच्चा पैदा होता है तो उसका खून का दौरा ज्यों-ज्यों अधिक हरकत करता है और वह दौरा जब इन सूक्ष्म भागा(Cells) से गुजरता है, वह उनको मिलाता रहता है उस समय छोटे बच्चों में बुद्धि (Sense) नहीं होती जैसे-जैसे बच्चा बढ़ता है वह सूक्ष्म भाग (Cells) बढ़ते जाते हैं। यह जो साधन सुरत शब्द का किया जाता है इससे सिर के अन्दरखून के दोरे नियमित (Regulate) हो जाने से जो सूक्ष्म भाग (Cells) हैं जो खास-खास गुण रखते हैं वह अपने अन्दर विकसित (Develope) हो जाते हैं और समता आ जाती हैं। हर एक सूक्ष्म भाग (Cells) खास-खास काम करने को बनाये गये हैं। जब हमारी सुरत वहाँ जाती है अथवा जिस स्थान का दौरा अधिक करने से वह सूक्ष्म भाग विकसित (Develope) होते हैं तो हमारे अन्दर वैसे-वैसे अहसास भाव विचार) पैदा ह ते रहते है ये हमारे जीवन की गढ़त का खेल है डाक्टरी विज्ञान (Medical Science)भी यही कहता है यही कबीर या अन्य सन्त कहते हैं। वह अडोलपना, निर्भयता, बेफिक्री तुम्हारे दिमाग के अन्दर सूक्ष्म भागों (Cells) में पारस्परिक एकता (Coordination) को होना है।

हम इस शान्ति प्राप्त करने के लिये क्या करते हैं ? कोई जप तप, संध्या, तीर्थ व्रत, दान आदि करते हैं। कोई अपने कल्पित रूप से अपने आपको कुछ समझता रहता है। कोई

अपने को अहं ब्रह्म कहता है मगर अपने क्रियात्मक जीवन में या रहनी में दुख-सुख उठाता है, शान्ति प्राप्त नहीं कर पाता इसके समर्थन में आप प्रमाण माँगेंगे। इसका प्रमाण है कुछ अपना अनुभव कुछ दूसरों का अनुभव। मुझे याद है कि जब मैं सुनाम स्टेशन पर था तो एक वेदान्ती साधु मेरे पास आया मैंने उसे नमस्कार किया। उसने कहा कि किसको नमस्कार करता है ? तब मैंने उसकी बातों से समझा कि वह केवल कल्पना से वेदान्ती है। साधन सम्पन्न (असली) वेदान्ती नहीं ७-८ महीने बाद वह फिर आया। मैं काम कर रहा था। वह रो पड़ा। कहा दर्द गुर्दा है। ठीक नहीं हुआ। अमृतसर जाना है मदद कर दो। दो माह बाद फिर किसी ने उसको गाड़ी से खींचकर बाहर निकाला। देखा वही साधू है बोल नहीं सकता था। मैंने कहा नमस्कार करता हूँ। वह उत्तर तो न दे सका मगर आँखों से आंसू बहने लगे। कहने का भाव ये है कि केवल कल्पना या विचार से कुछ मान लेने से काम नहीं बनता, वह दुख-सुख से नहीं बच सकता।

इससे सिद्ध होता है कि जब तक सुरत हमारी खोपड़ी के भूरे भाग के सूक्ष्म अंगों Cells में नहीं आती तब तक शान्सि (Peace ofmind) नहीं आ सकती। चाहे लैक्चर दो, चाहे वाणी पढो, चाहे वेद पढ़ो, असली जीवन की जो समता है, अन्तर में बिना जाये नहीं आ सकती।

कुछ दिन हुए मुझे बाजू में कहीं दर्द हुआ। मैंने लाख कोशिश की कि दर्द चला जाय। सुमिरिन किया दाता दयाल का रूप भी बाँधा मगर दर्द नहीं गया। ख्याल आया फकीर इतना नाम जपा कि उम्र व्यतीत हो चुकी। इससे तू दुःख से न बच सका। मैंने अन्धविश्वास से किसी बात को नहीं माना

मैं रिसर्चर हूँ मगर मेरा एक अन्धविश्वास था कि दातादयाल महर्षि (शिव) के रूप में उस मालिक परमतत्व को मानता था फिर शब्द प्रकाश खुला। उसमें चला गया होश नहीं रहा सुबह उठा। दर्द गायब। यह मेरे जीवन का अनुभव है। इस लिये मैं सन्त मत को मानता हूँ। यही कबीर ने कहा :

फिर उस अवस्था की प्राप्ति का क्या तरीका है ?

चहुं दल कंवल त्रिकुटी साजे, ओंकार दर्शाया है।
रंरकार पद सेत सुन्न मध षट दल कंवल बताया है ॥

पहिले सहस दल कंवल बता दिया गया। उसके बाद उसके बाद त्रिकुटी का स्थान है। विद्वता की बात कहनी और बात है मगर मैं अमली पहलू से बताता हूँ। तुम किसी विचार में लीन हो अथवा ऐसी दशा में हो जब किसी चेष्टा का ध्यान नहीं रहता अथवा पूर्ण ध्यान से किसी काम को करते हो तो बाकी दुनियाँ को भूल जाते हो। दुनियाँ को भूल जाने अथवा अपने मन की वृत्ति को किसी विशेष पौइन्ट पर गाढ़ देने का नाम है त्रिकुटी। मन की वृत्ति का एक ख्याल में लगकर बाकी ख्यालों को भूल जाना ही त्रिकुटी है। बिल्कुल सुगम है। यह जरूरी नहीं कि गुरू प्रेम से ही त्रिकुटी मिले। तुम किसी ख्याल को ले लो। चाहे किसी समुदाय के हो, चाहे किसी पन्थ के हो जब वृत्ति उस ख्याल पर पूर्ण रूप से जम जायेगी बाकी चीजों को भूल जाओगे। शारीरिक ज्ञान बोध को भूल जाओगे। अपने ख्याल को या चित्त की वृत्ति को एक जगह लगाने से शारीरिक ज्ञान बोध को भूल जाना ही त्रिकुटी है। यह मेरा निज अनुभव है।

त्रिकुटी के पहुंचने से पहले एक और अवस्था आती है, जिसका नाम सहसदल कंवल है, जिसका वर्णन पहिले भी

किया जा चुका है। वह अवस्था है अनेकवाद। उस अवस्था में तुम्हारे मन में अनेक विचार उठते रहते हैं। जब तुम अभ्यास में बैठते हो तब कल्पित रूप बनाते रहते हो। उनके साथ बातें करते रहते हो अथवा अन्तर में ठहर कर अपने दुनियावी दुख-सुख परमार्थ या धार्मिक मसले हल करते रहते हो और इस प्रकार अनेक विचार आते रहते हैं। विचारों की झड़ी लग जाती है। माना कि किसी ने मेरा ध्यान किया तो कोई दाढ़ी बनावेगा, कोई मुंह का रूप बनायेगा कोई आँख को बनावेगा। फिर उससे बात करेगा। सोचेगा कि बाबा ने अमुक बात कही थी। मैं कभी राम का ध्यान करता था। कभी धनुषधारी राम का रूप बनाकर उनसे प्रेम करता था। कभी वह रूप आगे-आगे आगे राम चलत हैं पीछे सीता माई, बनाता था। आदि आदि।

धार्मिक जगत वाले या साँसारिक कामना वाले किसी ध्येय को लेकर जब तक खयाल पैदा करते हैं तब तक उस ध्येय से जुड़ नहीं जाते। उस जुड़ने से पहली अवस्था का नाम है सहसदल कंवल अर्थात अनेक वृत्ति वाली अवस्था यदि ध्येय के विरुद्ध विचार उठते हैं तो उनको कह देते है गुनावन अर्थात व्यर्थ के विचार उठना। ये ही हमारे दुःख का कारण बन जाते है। यह इस प्रकार समझ लो जैसे कि लड़का पढ़ता है। पढ़ाई में मन नहीं लगता। मन किसी दूसरी ओर जाता है इसका अथवा सहसदल कंवल से निकलने का इलाज है सुमिरन। जो नाम तुमको दिया गया है अर्थात जो वर्णात्मक नाम बताया गया है उसका सुमिरन। जब तुम्हारा मन ध्येय के विपरीत ख्याल उठावे तो बताये हुए नाम का सुमिरन करो।

उस शान्ति के प्राप्त करने के लिये तिल के रास्ते में अन्दर में जाना पड़ता है। बिना सुमिरन के उसको प्राप्त नहीं कर सकते। इसके प्राप्त करने को मैंने जीवन खो दिया। सन्तों ने उसकी प्राप्ति को बताया सुमिरन। क्या सुमिरन? बिना जुबान हिलाये अपने ख्याल के साथ नाम का जाप। इससे तुम्हारे मन को जो व्यर्थ के संकल्प-विकल्प उठता है रोक लग जायेगी। सोच-समझ कर सुमिरन करो। अनाप शनाप सुमिरन से शान्ति (तसकीने कलब) नहीं मिलेगी, या ध्येय की पूर्ति नहीं होगी। जो ध्येय है उसको शब्द या रूप द्वारा याद करने का नाम है सुमिरन। जीवन की अनेक जरूरतें हैं। हर एक वासना के ध्येय की प्राप्ति को ऋषियों ने या सनातन धर्म में अलग नाम और अलग रूप बताये हैं। सन्तों का जो सतनाम या राधास्वामी नाम है यह केवल जन्म मरण से बचने के ध्येय से है। दुनियाँ की जरूरतों को और नाम है तथा और रूप हैं मगर सन्त मत में ध्येय की प्राप्ति को सन्तों के बताये हुए नाम का सुमिरन है और सनातन में अनेक तरह के नाम और रूप देकर ध्येय की प्राप्ति के साधन बताये हैं।

जिनका मन नहीं लगता था तो दातादयाल (महर्षि शिव) ने सर्व साधारण को नाम माला बताई थी। किसी-किसी को त्राटक और कई को नाक की नोंक (अग्रिम भाग) पर ध्यान जमाना बता गये। यह सब प्रकृति के अनुसार बताये जाते हैं प्रवृत्ति मार्ग के लिये अनेक उपाय हैं। अधिकतर ज्योति का ध्यान बताया जाता है। इसलिये जो नाम और तरीका गुरू बताता है, उस पर चलना चाहिए। इसका प्रमाण क्या है?

मेरा मन बड़ा चंचल था। मैंने नाम लेने पर ८ साल तक कोशिश की कि मन अन्तर में ठहरे मगर नहीं ठहरा। यह मैं

अपनी कमजोरियाँ बता रहा हूँ। लोग अपने मन के चिट्ठे को बताते नहीं। मैं एक बार लाहौर गया। वहाँ सत्संग है मन गन्दा हो रहा था। लाख कोशिश करने पर भी रुकता नहीं था। ऐसी दशा अनेकों पर आती होगी। अब ख्याल आता है कि दातादयाल ने बड़ी बुद्धिमानी से काम लिया। कहा सत्संग है मन शुद्ध रखा करो वनाँ वातावरण खराब होता है परन्तु फिर भी मन काबू में नहीं आया। फिर कहा फकीर तुमको कह रहा हूँ। मगर मन फिर भी काबू में नहीं आया। फिर कहा फकीर को उठा कर जूते मारो। विष्णु दिगम्बर वहाँ थे उन्होंने पकड़ लिया कहने का अभिप्राय यह कि मन का रोकना आसान काम नहीं। कबीर साहब ने इसको महा जालिम (अत्याचारी) बताया है। उनका शब्द है :—

साधो यह मन है बड़ा जालिम ॥
जाको मन से काम पड़ो है, तिसही ह्यँ मालुम ॥१॥
मन कारण जो उनको छाया, ते ह छाया में अटके ॥२॥
निरगुन सरगुन मन की बाजी, खरे सयाने भटके ॥२॥
मन ही चौदह लोक वनाया, पाँच तत्व गुन कीन्हे।
तीन लोक जीवन बस कीन्हे, पैर न काहू चीन्हे ॥३॥
जो कोउ कहे हम मन को मारा, जाके रूप न रेखा।
छिन-छिन में कितनों रंग लावै जे सपनेहु नहि देखा ॥४
रसातल इकइस ब्रह्मण्डा, सब पर अदल चलावै।
षट रस में भोगी मन राजा, सो कैसे कैं पावै ॥५॥
सबके ऊपर नाम निहच्छर तहं लौ मन को राखौ।
तब मन की गति जान परे यह,सत कबीर मुख भाखौ ।६।

तो इस मन के विचारों को रोकने के लिये सुमिरन ध्यान यह सहसदल कंवल, त्रिकुटी,सुन्न, महासुन्न, भंवर गुफा आदि

जितने दर्जे हैं सब मन के हैं। कोई यह कहे कि त्रिकुटी में अभ्यास करके मन पर सदा के लिये काबू पा जायेगा मेरे अनुभव में नहीं आया।

कबीर साहब और राधास्वामी दयाल की वाणी इसका समर्थन करती है। इसलिये जो स्वामी ने तथा कबीर ने कहा है ठीक है।

मैंने त्रिकुटी में अभ्यास किया। दातादयाल का रूप प्रकट किया। उसमें आनन्द लिया मगर उसी मन ने मुझ से मजबूरन ऐसे खयाल उठवाये जिनको मैं नहीं चाहता था। यह मेरे जीवन का अनुभव है। अपना कच्चा चिट्ठा बताकर सत्संग करा रहा हूँ ताकि जो शान्ति के जिज्ञासू हैं।' उनकी समझ में मेरी बात आ जाय।

मनुष्य लाख घण्टा या ओंकार की धुनि सुनकर यह कहे कि मन सदा दुख सुख का कारण नहीं बनेगा, मेरे अनुभव में नहीं आया। इस मार्ग के महात्मा लोग तथा बड़-बड़े अभ्यासी अपनी- अपनी रहनी को देखें और कहें कि मेरा कहना कहां तक सच है। बड़े-बड़े तपेश्वर भी ऐसे गिरते है कि कोई हिसाब नहीं। शास्त्र कहते है कि विश्वामित्र को मेनका ने छला। वह गिर गये। मेरे जैसे भी मान को सत्संग कराते है, अपना असली जीवन पेश नहीं करते केवल पुस्तकों के आधार पर सत्संग कराते है।

जो तिल के तिल भीतर जाना चाहे उसको मन के स्वभाव का तजुर्बा होना अनिवार्य है। जब तक मनुष्य मन के थपेड़े नहीं खा लेगा अथवा मन की स्थिति का तजुर्बा नहीं हो जायेगा वह आगे जा नहीं सकता।

मैं महसूस करता हूँ कि ऊंची बात को आप लोग नहीं

समझ सकते । यदि न बताऊं तो नतीजा यह है कि आज राधास्वामी मत को १०१ वर्ष हो गये और लोग नाम जपते हैं, अभ्यास करते आ रहे हैं मगर पुराने सत्संगी जो मुझे मिलते हैं वह कहते हैं कि उम्र खो दी और कुछ नहीं मिला यदि किसी को कुछ मिला तो इतना कि किसी में बाबा सांवले शाह प्रकट हुए या किसी में गुरू प्रकट हुए । किसी में गोपाल का रूप प्रगट हुआ । कोई बात अन्तर में कह दी या दबा बता गया । इससे क्या हुआ ! केवल यह कि उसे सहारा मिल गया या उत्साह बढ़ गया, मगर इसमें सत्यता नहीं है । यदि वही रूप सब कुछ होता तो शान्ति मिल जाती । गोपालदास मेरी स्त्री को फूंक कर आया । रोने लगा । कहता है माताजी बैठी हैं बोलती नहीं । इसके अन्दर मेरा रूप प्रकट होता है । और शब्द का प्रकाश भी होता है । यदि यही सब कुछ होता तो ढायें मारकर क्यों रोता । मैं खोल-खोलकर वह बातें बता रहा हूँ कि तुम्हारा उलझनें दूर हो जाँय और तुमको इस जीवन में ही परम शान्ति (peace) मिल जाय । (शब्द वही फिर पढ़ा गया)

है तिलके तिलके तिल भीतर, विरले साधू पाया है ।

... ...

ररंकार पद सेतु सुन्न मध, षद दल कंवल बताया हैं ।

तिल के अन्दर क्या है ? तुम्हारे मन के संकल्पों का उठना मन के रोकने को सुमिरन है । मन को ठहराने को ध्यान हैं । मन से निकलने को प्रकाश का साधन है । ब्रह्म का देश है । यदि प्रकाश अन्तर में पैदा भी कर लिया । तब भी शान्ति जब मिलेगी जब अपने अन्तर में जाकर अनुभव होगा । जब तक अभ्यास के बाद ज्ञान नहीं होता, अनुभव नहीं होता । स्थायी

शान्ति मिलना असम्भव है। मैंने बड़े-बड़े साधुओं को देखा है जिनमें प्रकाश होता है मगर फिर भी अशान्त हैं। इसलिये सन्तमत में शान्ति के लिये कहा गया है मोक्षमूलम् गुरू कृपा मरने के बाद मोक्ष मिलती है वह निरी कल्पना(Theory) है। मुझे जीवन में मोक्ष प्राप्त है मगर मर कर नहीं देखा। मोक्ष का अर्थ यह है कि हमारे जितने संकल्प विकल्प व भाव उठते हैं इन्हें माया समझकर इनमें न फंसना। इन्हें सन्त न मानना। यही मोक्ष है। यह मेरी समझ में आया है। मैं असली पहलू का सत्संग करा रहा हूँ। पुस्तकीय ज्ञान के आधार पर नहीं किन्तु निज अनुभव के आधार पर कह रहा हूँ।

मुझे शान्त कहाँ मिली ? वह आप लोगों ने दिलाई। आप मेरे लिये असली सन्त सतगुरू हैं। दातादयाल ने आपका रूप धारण करके मेरा बेड़ा पार किया। वह कैसे ? वह इस तरह कि मैं तो आपके अन्दर जाता नहीं तो मुझे पूर्ण निश्चय हो गया कि जितने ख्याल मन के अन्दर होते थे वह मेरे मन के चक्र से होते थे। मैं उन्हें सत मानकर उनमें फंसा रहता था चूंकि वह मेरे विचार थे। उन्हें अब माया समझ लिया है। यह माया अब मुझे फंसाती नहीं है। जब तक हम माया देश में है वह काम करेगी मगर अब माया मुझे फंसाती नहीं। आज दाता दयाल (महर्षि शिव) का रूप प्रगट हो गया तो कोई खुशी नहीं होती कोई विपरीत खयाल भी आता है जिसे मैं नहीं चाहता, तो चूंकि मुझे ज्ञान हो गया है कि यह मेरी ही प्रकृति के अनुसार होगा या बाहरी खयाल होगी। इसलिये यह माया मुझे फसा नहीं सकती। यह मेरी शान्ति का प्रमुख कारण है।

सुमरिन करने से, ध्यान करने से तथा रंरकार धुनि सुनने से मुझे मानसिक आनन्द मिला, ऋद्धि, सिद्धि शक्ति आ गई, क्योंकि यह खयाल की या संकल्प की शक्ति है। इससे इच्छा शक्ति (Will power) बलवान हो गई।

फिर सुमिरन ध्यान से लाभ क्या।

इसका लाभ यह है कि एक तो तुम मन के चक्र से बचोगे दूसरे तुम्हारी इच्छा शक्ति बढ़ जायेगी तुम जैसा-जैसा सोचते रहोगे वैसा-वैसा होता रहेगा।

तो मोती क्या चीज है? जो मैंने समझा वह कहता हूँ। कि अपनी दुनियाँ को खयाल से (संकल्प से) बेहतर बनाना। अपने सकल्प को ठीक बनाना। अपनी दुनियाँ को ठीक करना ओर इसमें न फंसना। काम आया कर दिया। फिर भूल गये। अर्थात उसका कोई प्रभाव तुम पर न रहे। कबीर ने मोती को क्या समझा उसे वह जाने।

सवाल किया जा सकता है कि उस मोती को प्राप्त करने को क्या करना है? उसके लिये सुमिरन ध्यान करना है। मैं नहीं कहता कि तुम राधास्वामी नाम का सुमिरन करो या राम नाम का सुमिरन करो। मैं राधास्वामी पन्थ में आकर उसमें फंसा नहीं हूँ। मैं पन्थ के जाल में फंसकर मर जाऊंगा तो फिर जन्म लेना पड़ेगा। क्योंकि पंथ से बंध गया। दाता-दयाल (महर्षि शिव) ने पिछली अवस्था में नैय्यर (श्री मोहन लाल नय्यर देहली) को लिखा था कि नैय्यर! तुम ही कहते हो मुझे राधास्वामी। (इससे प्रकट होता है कि उस अवस्था में पहुंचकर राधास्वामी पंथ से बंधे हुये नहीं रहे।) पंथ से स्वतन्त्र होने के लिये या स्वतन्त्रता की अवस्था में आने के लिये पहिले पंथ में बंधना पड़ेगा। जब तक बंधते नहीं स्वतन्त्र

नहीं हो सकते। दाता दयाल पहले हजूर महाराज (हजूर राय सालिगराय साहब) के जाल में फँसे कि नहीं? राधा-स्वामी मत का प्रचार किया। मैं यह नहीं कहता कि पन्थ में न आओ। नहीं, किन्तु मेरा अभिप्राय है कि पन्थ में फँसो नहीं। सत्संग में राज (भेद) को समझ लो। फिर कुछ नहीं करना है। केवल मन को संभालना है। सुमिरन ध्यान करते रहो। मन की निरख-परख करते रहो। मगर साथ ही साथ जो कष्ट होगा अथवा जो कठिनाई आयेगी तो मेरे सत्संग के बाद तुम उससे घबराओगे नही। बात को समझ लो। यदि समझ में आ जाय तो विक्षेप दुखदाई नहीं होंगे।

मैंने अपनी आपत्तियों का हल जो मुझ पर आई, दाता दयाल से किया। उसके बाद आप लोगों से किया। यह मैं दीनता से नहीं कह रहा। कहा है :—

गुरू बतावें साध को साधु कहें गुरु पूज।
अर्श पर्श के मेल से, बूझी बूझ अबूझ ।।

मैं दाता दयाल को तंग किया करता था। उन्हीं को सब कुछ मानकर उनके पीछे पड़ा रहता था। घण्टे-दो घण्टे रोया करता।

उन्होंने मेरी कमी को दूर करने को या कल्याण को मुझे सतगुरू की पदवी दे दी।

मन की हालत बहुत विचित्र है। इसका इलाज है सत्संग मन में विक्षेप बढ़े तो सुमिरन ध्यान में लग जाओ। ऐसे लोगों को जो अभी प्रारम्भिक अवस्था में है उनको सोते, उठते बैठते मन की निरख-परख करते रहना चाहिए। यदि मन ऊट पटाँग सोहें तो सुमिरन ध्यान में लग जाना चाहिए। सिवाय

इसके और कोई इलाज नहीं है। मैं अब भी करता हूँ। इतना चढ़ने पर भी जीव दशा में मेरा मन अब भी संकल्प उठाता है। बहुत से लोगों का कहना है कि मन को मार दो मगर उनका यह कहना केवल कथन ही कथन है वाचक ज्ञान हैं। देखो ! यह ज़रीर है इसमें दिल (Heart) चलता है। यदि ये न चले तो आदमी मर जाय। हमको हृदय की गति को नियमित (Ragularise)करना है न थोड़ा चले न अधिक। दोनों हालतों में दुख होगा। इसी प्रकार हमारा मन है जब तक जीवन है मन चलेगा। यदि मन न हो तो संसार का कोई भी काम नहीं हो सकता। देखा यह है कि मन चंचल न हो जाय। जो स्वभाव हृदय का है वही मन का है।

हृदय रोग के लिये वैद्यक या डाक्टरी में औषधि बताई गई है। मन के रोगों को दूर करने को सन्तों ने दवा बताई है वह दवा है सुमिरन और ध्यान। यह है मोती जो मेरी समझ में आया है।

यह जो कंवल है। यह सुषुम्ना आदि नाड़ी होती है। उन कंवलों को ढूंढते-ढूंढते उम्र गुजर गई। हमारी देह में विभिन्न चक्र (Centres) है। गुदा का पेशाब का, नाभिका का, हृदय का कन्ठ का आदि आदि। जब खाँसी आती है बलगम स्वतः ही मुंह से निकल जाता है। पेशाव आता है तो पेशाव की इन्द्री से निकलता है। इसी तरह और भी समझ लो।

हमारे मन के विचारों की भी नाड़ी है ईड़ा, पिंगला और सुषुम्ना। जिनका विचार गन्दा, घृणा, द्वेष, स्वार्थपरता आदि का है तो उनका विचार दिमाग में जायेगा वह बाँई या ईडा नाड़ी से जायेगा। जिनका विचार शुभ कल्याणकारी है उनका

विचार जब मस्तिष्क में जायेगा तो दाईं यानी पिंगला नाड़ी से जायेगा। जिनका विचार न शुभ है, न अशुभ केवल शान्ति की इच्छा है। वह विचार सुषुम्ना नाड़ी के रास्ते से जायेगा जो लोग इस खोज में हैं कि सुषुम्ना में होकर या ईडा पिंगला में होकर कैसे जायं वें भ्रम में हैं अनजान में हैं। यदि मनुष्य अपनी वासना को ठीक कर ले तो स्वतः ही इन दर्जों से गुजर जायेगा। दुनियाँ व्यर्थ कवलों और नाड़ियों के जाल में फंसी है।

सहसदल कंवल के चक्र पर कोई फूल तो है नहीं जिसकी पंखड़ी लगी हों। मन में हजारों प्रकार के विचार उठते रहत हैं इसलिये उनका नाम है सहसदल कवल। अब त्रिकुटी योग की भाषा में क्या है ? ध्याता ध्यान और ध्येय या प्रेमी, प्रेम और प्रेमास्पद जिससे प्रेम किया जाय) इन तीनों के मेल का नाम है त्रिकुटी। जब ध्यान गहरा हो जाता है तो प्रेम गुम हो गया गुप्त हो गया। वहाँ द्वैत रह जाता है-ध्याता और ध्येय। यह सुगम है, कठिन नहीं हैं।

जब ध्यान और गहरा हो गया उसमें लय हो गये, अपना आपा भी भूल गये तो यह अद्वैत है। यह मार्ग सरल है चूंकि कठिनाई पसन्दी आ गई है सुगम बात को कठिन बनाते हैं इस आदमी भटकसा रहता है। गुरू इन सबको हल कर देता है। सरल बपाय बता देता है। इसके एक-दो उदाहरण देता हूँ।

एक आदमी मेरे पास आया। उसे किसी चीज की आवश्यकता थी। उसके लिये मेरी समझ में यह आया कि इसे तप कराया जाय। फिर कैसे कराऊँ। याद रखो बिना तप किये किसी को कुछ नहीं मिलता। किसी इच्छा को लेकर उसमें बार-बार लगना और लगे रहने का (शेष अगले अंक में)

"मनुष्य बनो" (हिन्दी मासिक पत्र) समाचार पत्र (केन्द्रीय) अधिनियम १९५६ नियम ८ फार्म ४ के अनुसार अपेक्षित आवश्यक सूचना

१—प्रकाशन का स्थान	:	अलीगढ़
२—प्रकाशन अवधि	:	मासिक
३—मुद्रक का नाम	:	श्रीमती सुधा मीतल
क—राष्ट्रीयता	:	भारतीय
ख—पता	:	शिव भवन, लेखराज नगर, अलीगढ़।
४—प्रकाशक का नाम	:	श्रीमती सुधा मीतल
राष्ट्रीयता	:	भारतीय
पता	:	शिव भवन, लेखराज नगर, अलीगढ़ ।
५—सम्पादक का नाम	:	श्रीमती सुधा मीतल
राष्ट्रीयता	:	भारतीय
पता	:	शिव भवन, लेखराज नगर, अलीगढ़ ।
६—स्वत्वाधिकारी	:	श्रीमती सुधा मीतल
संरक्षक	:	परमदयाल फकीरचन्द्र जी महाराज

७—मैं सुधा मीतल घोषित करती हूं कि उपर्युक्त विवरण मेरी जानकारी और विवरण के अनुसार सही है ।

दिनांक १५ नव०, १९८८

सुधा मित्तल

प्रकाशक के हस्ताक्षर

Regd. NO L—ALG.28

मिलने का पता :—

'मनुष्य बनो' कार्यालय

शिव भवन, लेखराज नगर

अलीगढ़—२०२००१ (उ

अवैतनिक सहायक सम्पादक

महेशचन्द्र मालल

सम्पादक, व्यवस्थापक व प्र

श्रीमती सुधा

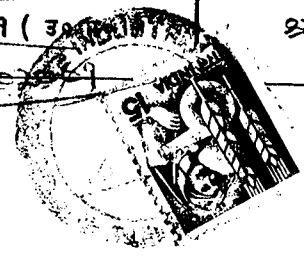

ग्राहक संख्या— 1769

श्रीमान Satya Narayan

H. No 1.8.213/1

Peduer ghost Road

Secunderabad (A.P)

मुद्रक : श्रीमती सुधा मीतल, दातादयाल प्रिंटर्स, लेखराज नगर, अलीगढ़।